मगसिर शुक्ल ७, शुक्रवार, दिनांक २०-१२-१९७४, श्लोक-४-५, प्रवचन-१०

समाधितन्त्र, पृष्ठ १२ है। अन्तिम दो लाईनें हैं। **अनादि से सभी जीवों में केवलज्ञानादिरूप परमस्वभाव शक्तिरूप से है।** यह आत्मा वस्तु है। उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसी अनन्त शक्तियाँ अनादि की हैं। उसका स्वभाव ही उस जाति का है। स्वभाववान आत्मा, परन्तु उसका स्वभाव कहो, शक्ति कहो, गुण कहो या सत् का सत्त्व कहो, उस सत्त्व में अनन्त शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति भी परिपूर्ण अनन्त सामर्थ्य से भरपूर है।

यह **केवलज्ञानादिरूप....** अर्थात् अनन्त लेना। **परमस्वभाव शक्तिरूप से है।** आहाहा! जहाँ उसे नजर करनी है, वहाँ सब पड़ा है, कहते हैं। समझ में आया? नजर अर्थात् दृष्टि जहाँ करनी है, उसमें वे अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी अनन्त शक्तियों को **उस स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें लीन हो...** ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, उनका श्रद्धान। श्रद्धा अर्थात्? उसके सन्मुख की निर्विकल्प अनुभव में प्रतीति। अनन्त शक्ति है, उसके सन्मुख होकर, सन्मुख हुआ अर्थात् सत् है, उसके (सन्मुख) मुख वहाँ किया। आहाहा! इससे उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शनरूपी निर्विकल्प पर्यायरूप परिणमे। आहाहा! और उसका ज्ञान। अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रभु, उसका ज्ञान। स्वसंवेदनज्ञान। लो, यह मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा, वह तो वस्तु है, सत् है। उसका सत्त्व-भावरूप सत्त्व जो है, उसका कस है.... आहाहा! वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि। अनन्त-अनन्त की संख्या के समुदायवाला वह समुदायी है। उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान की-श्रद्धा की पर्याय राग के सन्मुख है.... अथवा जो ज्ञानलक्षण है, वह लक्षण द्रव्य का-स्वभाव का है, वह लक्षण वहाँ न जाकर लक्षण को राग में जोड़ दिया, वह अनादि का मिथ्यात्व का भ्रम है। समझ में आया? वह इसने वहाँ की दशा छोड़कर अपने स्वभाव सन्मुख की दिशा की ओर दशा ढली, तब उसमें दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीन प्रगट होते हैं। ऐसी सूक्ष्म बातें। अरे! उसके भान बिना भटक मरा चौरासी के अवतार में। समझ में आया? ऐसा शक्तिसम्पन्न प्रभु, उसका स्वीकार नहीं और बाहर में

मान मिले, इज्जत मिले, दया-दान-व्रत के परिणाम (हों).... आहाहा! उसका आदर और उसकी महत्ता (करे)। मूढ़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पूरी दुनिया करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया मूढ़ है। आहाहा! पूरी दुनिया दुःखी है।

भगवान आनन्द का नाथ, आनन्द शक्ति अन्दर पड़ी है। बेहद अपरिमित जिसका अतीन्द्रिय रस है। उसका स्वीकार अर्थात् 'है' उसकी अस्ति का स्वीकार न करे और उसमें पुण्य और पाप, दया, दान, काम, क्रोध, भाव नहीं, उसका स्वीकार करे। समझ में आया? आहाहा! यह सब पैसेवाले करोड़पति और अरबोंपति वे बेचारे दुःखी हैं।

मुमुक्षु : उन्हें बेचारा कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : बेचारा नहीं कहा जाये, उसे भिखारी कहा जाये। भीख माँगता है। जहाँ नहीं, उससे भीख माँगता है। समझ में आया? आहाहा!

एक बहुरूपिया गरीब का वेश लेकर आया। दुकान थी वहाँ आया। माँ-बाप! कुछ दो न रोटियाँ, कुछ चावल। देखता है कि सामने दीवार है। तीन हाथ की मात्र दुकान वहाँ गलीचा पड़ा हुआ, सेठ बैठा हुआ। तुझे खबर नहीं कि यहाँ.... यहाँ कहाँ था? वह बहुरूपिया ने माँगा। वे कहे परन्तु यहाँ कहाँ? भान बिना यहाँ कहाँ आया? यह दो तकिया पड़े हैं और दो बैठे हैं। ....पास में दीवार है। हमारे नहीं चूल्हा, नहीं अनाज। यहाँ कहाँ माँगता है? फिर उसे-सेठिया को ख्याल आया कि यह तो कल आया था हाथ में लकड़ी लेकर। सब गहने तुमने माँगाये हैं, उसकी रसीद आ गयी तुम्हारे? दूसरे दिन बोला। आज यह होकर आया। यह तो वह कल था वह। उसे खबर नहीं कि यहाँ नहीं। ....भिखारी यह नहीं माँगे? जहाँ कहीं रोटियाँ हों, धुँआ निकलता हो, पकता हो तो रोटियाँ माँगे। वहाँ तो माँगे। कुत्ता भी वहाँ बैठे, गन्ध आती हो वहाँ। दुकान सामने देखकर बैठा हो कुत्ता? आहाहा! फिर उसको पहिचान गये। अरे! तू तो कल बहुरूपी....

उसी प्रकार भगवान आत्मा पर में भीख माँगता है, कहाँ वहाँ था? खाली दुकान देखकर बैठा है। वहाँ रोटियाँ कहाँ से मिलती थी? समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा

के अतिरिक्त राग और पुण्य और बाहर के संयोग में वहाँ कहाँ था सुख ? खबर नहीं, इसे भान नहीं। वहाँ से माँगता है। यह देना.... देना.... वह बहुरूपिया रूप धारण करके आया, इसने मिथ्यारूप धारण किया। आहाहा! पोपटभाई! जिसमें अन्तर आनन्द शक्ति पड़ी है, वह सुखधाम है। आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम' नहीं आया ? श्रीमद् में।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।

बापू! यह सत्य है। ऐसे आत्मा की शक्ति को जिसने श्रद्धा में लिया, उस श्रद्धा का अर्थ ऐसा पूरा महातत्त्व है, उसकी प्रतीति का जोर कितना ? समझ में आया ? अनन्त आनन्द है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त शान्ति है। शान्ति अर्थात् चारित्र—वीतरागता। अनन्त वीर्य है। ऐसी अनन्त शक्तियों को जिसने श्रद्धा में लिया, उस श्रद्धा का जोर कितना हुआ! यह.... है वह ? समझ में आया ?

उस शक्ति के स्वभाव में इसका श्रद्धा-ज्ञान करके.... आहाहा! वह त्रिकाल भगवान परमानन्द का नाथ है, अनन्त ज्ञान और शान्ति से भरपूर है। जो वीतराग हुए, वह वीतरागी दशा कहाँ से आयी ? कहीं बाहर से आती है ? वीतराग की शक्ति से, अकषाय स्वभाव से अर्थात् चारित्र शक्ति से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! उसे श्रद्धा में, अर्थात् कि उसके सन्मुख हुआ, तब उसका आदर किया अर्थात् 'है' उसका आदर किया। समझ में आया ? राग और उसके सन्मुख था तो इन शक्तियों का इसने अनादर किया था। आहाहा! ऐसा विद्यमान शक्तिवान परमात्मा स्वयं, उसका अनादर करके.... आहाहा! अल्पज्ञ और रागादि का स्वीकार करके उसमें उत्साह करके उसमें हर्षित हो गया। पोपटभाई! आहाहा!

कहते हैं कि उसने गुलाँट खायी। ओहोहो! जो मुझे चाहिए है शान्ति, आनन्द अतीन्द्रिय.... वह तो अपने आ गया न इसमें ? कि ऐसे श्रोता के लिये मैं कहूँगा। आहाहा! कैवल्य अतीन्द्रिय आनन्द और कैवल्य अर्थात् अतीन्द्रिय केवलज्ञान, उसकी स्पृहावाला, उस ओर की सन्मुख जिज्ञासावाला, उसे मैं यह समाधितन्त्र कहूँगा। पूज्यपादस्वामी ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! यों ही बेगाररूप से सुनने आया हो, चलो भाई सुनने, सब

जाते हैं तो हमें भी जाना पड़े, नहीं तो अपना व्यवहार खोटा पड़े, ऐसों के लिये यह नहीं है। आहाहा!

जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की पिपासा हुई है। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर की पिपासा छूट गयी है। आहाहा! यह तो वही आया न अपने ३१ गाथा में? भाई! नहीं आया? '**जो इंदिये जिणित्ता**' यह दूसरे प्रकार से बात की है। आहाहा! जिसने... भगवान और भगवान की वाणी, यह भी इन्द्रिय का विषय है, इसलिए उसे भी इन्द्रिय कहा है। उस इन्द्रिय को जिसने जीता है, अर्थात् कि उसकी सन्मुखता के भाव का नाश किया है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसकी नजर में चढ़ने से जिसे आनन्द का नशा चढ़े.... आहाहा! ऐसे भगवान की—प्रभु की अनन्त शक्तियाँ। यह प्रभु—स्वयं की बात चलती है, हों! भगवान, भगवान हो जाये, उनके घर में रहे। वे कहीं देते-बेते नहीं। आहाहा! यह आत्मा के सन्मुख होकर.... यह कहीं बात है! दिशा पलटाना, तब दशा पलटती है। दिशा पलटाने से दशा पलटती है। जो परसन्मुख की दिशा थी, उसे भगवान पूर्णानन्द के स्वभाव का पर्याय में व्यक्तपना नहीं था, इसलिए उसे वस्तु को अव्यक्त कही थी। परन्तु वस्तुरूप से कहो तो वह व्यक्त-प्रगट ही है। आहाहा! उसकी श्रद्धा-ज्ञान हो तो वे केवलज्ञानादि शक्तियाँ प्रगट हों। शक्ति तो शक्ति है। केवलज्ञान (आदि) शक्तियाँ प्रगट हों। इसका अर्थ केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट हों। शक्ति कहीं प्रगट नहीं होती। शक्ति तो त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा! ओहो! ऐसा वस्तु का स्वरूप इसने जाना नहीं। बाकी सब चाहे जितना जानपना हो, उस जानपने में माल स्व नहीं आया, वहाँ वह जानपना सब शून्य है। आहाहा!

कहते हैं कि **शक्तियाँ प्रगट हो जाएँ....** अर्थात् जो अनन्त शक्ति के स्वभाव का सामर्थ्य है, उसकी प्रतीति और ज्ञान और लीनता, उसमें अनन्त शक्तियों का वर्तमान दशा में उसका पर्यायरूप परिणमन हो जाये, वह शक्तियाँ प्रगट हुई—ऐसा कहा जाता है। **और केवलज्ञानावरणादि कर्म स्वयं छूट जाएँ।** अर्थात् कि उसे केवलज्ञानावरणीय छोड़ना नहीं (पड़ता)। यहाँ जहाँ भगवान अनन्त शक्ति का सागर प्रभु (विराजता है), उस ओर में जहाँ उग्रता स्थिर हुई अर्थात् कि केवलज्ञान (होने पर) उस समय कर्म की

अवस्था स्वयं छूट जाती है। ऐसा लिखा है न? इसे छोड़ना नहीं पड़ती। रजकणों की पर्याय अकर्मरूप होने के योग्य ही थी। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद्राजचन्द्रजी ने कहा है :— दृष्टान्त देने के लिये (आधार देते हैं)। '**सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय**' उसमें अभव्य आये हैं या नहीं सब? उसने यह निर्णय किया था न? भव्य राशि की अपेक्षा सर्वदेही का ग्रहण समझना। उसमें यह था न उसे? परन्तु इस बात में ऐसा कहाँ है? काल आया था न भाई वह उस ओर? 'भव्य राशि की अपेक्षा से सर्वदेही' ऐसी भाषा नहीं चाहिए। 'भव्य राशि की अपेक्षा सर्वदेही', (ऐसा) नहीं। सब जीव की अपेक्षा से (यह) सर्वदेही की व्याख्या है। समझ में आया? ऐसा शब्द लिया है, लो! सर्व देह में सर्व भव्य लेना—भवि। ऐसी यहाँ बात ही नहीं। सब आत्मायें जितने अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... पड़े हैं.... आहाहा! सबमें तीन प्रकार की अवस्थायें लागू पड़ती हैं। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में भी यह बात आती है।

समस्त जीव, शक्तिरूप से परिपूर्ण सिद्धभगवान जैसे हैं,... अरे! इसकी स्वीकृति वह कैसे हो, भाई! सभी जीव आनन्द के नाथ हैं। वस्तु स्वभाव से परिपूर्ण सन्तोष और शान्ति से भरे हैं। आहाहा! उन्हें तुम भिखारी और अल्पज्ञ न देखो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ अनन्त शक्ति से भरपूर आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने इस प्रकार से जाना है और इस प्रकार से कहा है और इस प्रकार से प्रगट किया है। आहाहा!

कहते हैं, **समस्त जीव, शक्ति...** अर्थात् सामर्थ्यरूप से, स्वभाव के जोररूप से परिपूर्ण पड़े हैं। आहाहा! सिद्ध भगवान जैसे हैं। **किन्तु जो अपनी त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभावशक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे,....** त्रिकाल शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द स्वभाववाला, तत्त्व अस्तिरूप-हयातीरूप है। ऐसे स्वभाव शक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे। सम्यक् प्रकार का अर्थ उस ओर जाकर उसका वेदन करे। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! यह कहे कि व्रत पाले और अपवास करे, यह करे और वह करे। वह तो राग की क्रिया है। समझ में आया? उसे सम्यक् प्रकार से समझे। ऐसी अनन्त

शक्ति का सागर परमात्मा है। छोटा क्षेत्र, इसलिए छोटा नहीं मानना। सर्प छोटा इतना, इसलिए छोटा नहीं मानना। वह तो जहरीला सर्प है। इतना भी सिर फोड़ डाले। राजा का कुँवर छोटा, इसलिए छोटा नहीं मानना। यह शास्त्र में दृष्टान्त आते हैं। सर्प का, राजा का। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा को शरीर प्रमाण देखा तूने तो इतना नहीं मानना। आहाहा! कहते हैं कि, वह तो महाप्रभु पूर्ण आनन्द और शक्ति का सागर है। सम्यक् प्रकार से उसे समझे, ज्ञान करे। वह ज्ञान तब किया कहलाये, अन्दर जाकर वेदन करे तो।

उसकी प्रतीति करे.... यह ज्ञान हुआ, उसमें भास हुआ कि वस्तु यह पूर्ण है, उसकी प्रतीति करे **और उसमें स्थिरता करे, वे परमात्मदशा प्रगट कर सकते हैं।** वह सिद्धदशा को—मोक्षदशा को वह प्राप्त कर सकता है। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन लगता है न। यह वस्तु है, उसका ज्ञान करके और उसकी प्रतीति करके उसमें रमणता करे। वह तो सब वीतरागी दशायें हुईं। समझ में आया? वह वीतरागी सम्यक्, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी लीनता, उसके द्वारा परमात्मदशा प्राप्त कर सकता है। आहाहा! समझ में आया? इसके कुछ व्यवहार करे और कुछ उससे मिले। यह दया, दान, व्रत, भक्ति यह व्यवहार तो, प्रभु! राग है। यह राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं। ज्ञानानन्दस्वभाव में यह उत्थान वृत्ति हो कि यह करूँ.... यह करूँ.... वह तो राग है। आहाहा! उससे भगवान भिन्न है। चैतन्यप्रभु (में) स्थिरता करे तो परमात्मदशा प्रगट कर सके। समझे न? परमात्मस्वरूप तो शक्ति से है, परन्तु परमात्मदशा प्रगट कर सके।

वर्तमान में जो धर्मी अन्तरात्मा है,... आहाहा! अब अन्तरात्मा में उतारते हैं। **वर्तमान में जो....** सम्यग्दृष्टि जीव है—अन्तरात्मा। अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप को अनुभव करनेवाला, प्रतीति करनेवाला, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अन्तरात्मा **उसे पूर्व अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था...** कहो, था या नहीं? तो इस नय से अन्तरात्मा को भी बहिरात्मा कहने में आता है। पूर्व में हो गया, इस अपेक्षा से। आहाहा! **और अब अल्पकाल में परमात्मपना प्रगट होगा।** एक-दो-चार भव में केवलज्ञान होनेवाला है, इसलिए उसे तीनों अवस्थायें यहाँ.... जानने में (आती है)। अन्तरात्मा तो

प्रगट है, बहिरात्मा गया, परमात्मा होगा। समझ में आया? आहाहा! इसकी क्रीड़ा तो देखो! आहाहा! क्रीड़ावान चढ़ गया राग की क्रीड़ा में। राग की क्रिया की क्रीड़ा में चढ़कर संसार में भटका। आहाहा! परन्तु उसमें पूर्ण स्वभाव का आश्रय करके.... आहाहा! अल्प काल में परमात्मा होगा। इस अन्तरात्मा को तीनों लागू पड़ते हैं।

परमात्मपद को प्राप्त हुए श्री अरहन्त और सिद्धभगवान को भी.... अब अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर महाविदेह में सीमन्धर.... सीमन्धर—अपने स्वरूप की मर्यादा के धारक। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकररूप से अरिहन्तरूप से (विराजते है) और सिद्ध-अशरीरी। चौबीस तीर्थंकर हुए, वे अशरीरी हुए। अभी सिद्ध हैं। और यह भगवान अभी विराजते हैं, वे अरिहन्त हैं। वे **अरहन्त और सिद्धभगवान को भी पूर्व में बहिरात्मदशा थी,...** पूर्व में थे या नहीं अज्ञानी? वे राग को धर्म मानते थे, पुण्य को धर्म मानते थे, उस दशा में थे।

उन्होंने अपनी स्वाभाविकशक्ति की प्रतीति करके.... वे अपनी स्वाभाविक शक्तियाँ जो त्रिकाल, उसके अनुभव की प्रतीति करके **जिस समय स्वभावसन्मुख हुए, उसी समय उनके बहिरात्मपने का अभाव हो गया और अन्तरात्मदशा प्रगट हुई, तत्पश्चात् उग्रपुरुषार्थ करके स्वभाव में लीन होकर परमात्मा हुए।** तीनों दशा उन्हें लागू पड़ती है। पूर्व में बहिरात्मा थे, इस नय से अभी भी उन्हें ऐसा कहा जाता है। फिर अन्तरात्मा हुए सम्यग्दर्शन अनुभव, धर्म की दशा, जिसने आत्मा के स्वभाव की प्रगट की, वह अन्तरात्मा अपने अन्तरात्मा के स्वभाव द्वारा परमात्मा हुए, उन्हें तीनों लागू पड़ते हैं। **इस प्रकार अपेक्षा से प्रत्येक जीव में तीन प्रकार घटित होते हैं—ऐसा समझना।** आहाहा! दीर्घ दृष्टि कितनी चाहिए इसे!

अब, बहिरात्मा किसे कहना? **बाह्य शरीरादि,....** शरीर और कर्म और पैसा और स्त्री, पुत्र, बँगला और धूल-धमाका। आहाहा! यह मेरे, ऐसी आत्मबुद्धि करनेवाला बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। बहिर्—जो इसमें नहीं। बाहर की जो चीज़ें, उनमें आत्मबुद्धि (की है कि) यह हमारे। यह पुत्र हमारे, यह स्त्री हमारी, यह पैसा हमारा, मकान हमारा, गोदाम हमारे। क्या कहलाते हैं वे? गोदाम। गोदाम-गोदाम। तुम्हारे

मुम्बई में बड़े-बड़े गोदाम हैं। ५०-५० बोरी ऐसे मजदूर करते हैं न। बड़े गोदाम। पहले एक, दो, पश्चात् तीन, फिर चार। सीढ़ियाँ वहाँ कहाँ बनाने जाये। पहले से देखो है, माल लेने जाते थे न मुम्बई। आहाहा! चार मण ऐसे उठाया हो, पहली एक बोरी रखे, फिर दो, फिर तीन, ५०-५० तक। ठेठ डाला हो। फिर ४९ हो, वहाँ उसकी पचास करे, यहाँ पचास करे, यहाँ पचास करे। आहाहा! क्रम से चढ़े।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, शरीरादि जो है, उसे जिसने अपना माना। जो नहीं, उसमें इसने माना। आहाहा! **विभावभाव...** यह पुण्य और पाप का भाव-विभाव, वह इसके नहीं हैं। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, तप का विकल्प राग, वह सब राग विभाव है। वह मेरा है, ऐसा जिसने माना है, उसमें आत्मबुद्धि की है। अथवा उस शुभराग से मुझे लाभ होगा, इसका अर्थ कि इसने शुभराग को अपना माना है। आहाहा!

तीसरा, **अपूर्ण दशा....** बात ठीक ली है। तब इन्होंने सुना था। एक तो शरीरादि परद्रव्य को अपना मानना तथा पुण्य और पाप विभाव को अपना मानना, दो। तीन, अल्प दशा को आत्मा पूर्ण है, ऐसा मानना। आहाहा! **अपूर्ण दशाओं में आत्मबुद्धि करता है,....** समझ में आया इसमें? आहाहा! **अर्थात् इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है,...** अर्थात्? यह शरीर, वाणी, मन, देश, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति के साथ यह मेरे हैं, यह मैं हूँ, अहं, मम। यह मैं हूँ—अहं। ये मेरे हैं—मम। आहाहा! इसने मम किया। लड़के मम खाते हैं न? इसने यह मिथ्यात्व का मम खाया।

इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है,... आहाहा! शरीर, कर्म आदि दया-दान के विकल्प और हिंसा के आदि के विकल्प और अल्पज्ञ दशा आदि में, 'यह मैं हूँ'.... आहाहा! एक समय की जो दशा है, वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है—पर्यायबुद्धि है। आहाहा! भगवान पूरा पड़ा रहा। **वह बहिरात्मा है।** बहिर् समझ में आया? वस्तु के स्वभाव में अल्पज्ञपना नहीं है, वस्तु के स्वभाव में विभावपना नहीं है और वस्तु के स्वभाव में शरीर, वाणी, कर्म नहीं है। वह तो परचीज़ है। आहाहा! हमारा देश, हमारा देश। क्या कुछ कहते हैं न तुम्हारे मुम्बई में? अमची। क्या? आमची मुम्बई? क्या कहलाता है वह सब? महाराष्ट्रवाले। आमची मुम्बई। किसके बाप की

मुम्बई? सुन न अब। हमारा गाँव, हम काठियावाड़ी। अरे! भगवान यह तू कहाँ से आया? कहो, समझ में आया? आहाहा! जो चीज़ इसमें नहीं, उसे स्वयं अपनी माने। आहाहा! यह दया-दान और व्रत-तप के विकल्प हैं, अपवास करना और यह सब राग है। आहाहा! उसे अपना मानना और उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाले उन्हें अपनेरूप से ही मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? ठीक डाला है। **वह बहिरात्मा है।**

वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को भूलकर,.... भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकस्वभाव के स्वरूप को भूलकर **बाहर में काया और कषायों में निजपना मानता है।** यहाँ दो आ गये। अल्पज्ञपना पहले सामान्य लिया। शरीर और कषायों में मेरापन मानता है, **उसको भावकर्म और द्रव्यकर्म के साथ एकत्वबुद्धि है; उन्हीं से अपने को लाभ-हानि मानता है।** आहाहा! ६० वर्ष में लड़का हो तो कहे, हमारे लाभ हुआ। वंश रखेगा। आहाहा! मूढ़ है, कहते हैं। वह चीज़ कहाँ तेरी थी? वह आत्मा पर है, उसका शरीर पर है। तेरा आत्मा उससे भिन्नरूप से वर्तता है। और उसका आत्मा तथा उसका शरीर तुझसे भिन्नरूप से वर्तता है। आया कहाँ से तेरा? आहाहा!

मुमुक्षु : लोक में गिनती हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक में गिनती हो। छह लड़के हैं न इन्हें। गाँव में गिनती हो। यह मैंने पूछा था एक बार, हों! चिमनभाई के कितने लड़के हैं? छह हैं। इन्हें भी छह हैं। पोपटभाई को। होशियार है, लो! आहाहा! भाई! (होशियार) किसे कहना? बापू! आहाहा! हाथ में रही हुई तलवार गले पर जाये, वह उस तलवार चलाने में होशियार कैसा कहलाये? इसी प्रकार जो बुद्धि संसार में भटकने के भाव को अपना माने.... आहाहा! अरे! यहाँ तो नौ पूर्व की लब्धि का ज्ञान है, वह मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा! वह मेरा ज्ञान है, ऐसा माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। परलक्ष्यीज्ञान, वह इसका कैसा? आहाहा! समझ में आया? महाप्रभु द्रव्यस्वभाव को भूलकर इसकी एकताबुद्धि (करके) इससे मुझे लाभ होगा। अरे! लड़का मर गया, हाय... हाय... मेरा सब गया। आया था। मूलचन्दभाई का लड़का मर गया है न! मूलचन्द केशवजी। सूरत-सूरत। मूलचन्द कापडिया। एक लड़का था, मर गया। यह तो दूसरा लड़का.... गोद। वहाँ

मरने पर अरे! मेरा सब गया। यह अभी तक कमाये-कमाये, उसे सौंपना चाहिए, उसके बदले वह तो चला गया, मर गया। आहाहा! कौन गया बापू तेरा? तेरा आत्मा अन्दर गया ऐसा माना उसमें। आहाहा! है न?

अपने को लाभ-हानि मानता है। हानि मानता है। लड़का ऐसा गया, मर गया तो हानि हुई। और अच्छा पका और कर्मी पका तो लाभ हुआ। पाँच-पाँच हजार का वेतन, आठ-आठ हजार का। इन सुमनभाई को। लड़के अच्छे हों तो होता है न? अपना माने। होता है या नहीं? तुम्हारा लड़का नहीं बड़ा वेतनदार? अधिकारी है। और यहाँ रोटिया घड़ते हैं इनके हाथ से। आहाहा! कौन किसका था? नजदीक हो तो भी उसका कहाँ है? दूर गया तो उसका कहाँ है? मर गया तो कहीं अन्यत्र गया तो उसका कहाँ है? दूर जाय या मर जाये। आहाहा! वह अपने को लाभ-हानि पर से माने। वह पुण्य के परिणाम से लाभ माने, पाप के भाव से नुकसान माने। परन्तु नुकसान तो पाप परिणाम है, उसे मेरा माना, उसमें नुकसान है। समझ में आया? आहाहा!

वह मिथ्यादृष्टि जीव, अनादि काल से संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन की क्रियायें हों, वे मेरी हैं, यह दया, दान के परिणाम व्रतादि के हों, वे मेरे हैं और अल्पज्ञपना वह मैं हूँ—ऐसा मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व में पीड़ित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भले फिर जैन का दिगम्बर साधु हुआ हो, नग्न हुआ हो। उसे यह क्रिया नग्न हुआ, वह मैंने की और इसलिए मैं साधु। यह नग्न की क्रिया को अपनी मानी। वह तो जड़ की क्रिया है। अन्दर पंच महाव्रत के विकल्प आवें, वह राग है। आहाहा! उस राग को करते-करते हमें कल्याण होगा। वह भी मिथ्यादृष्टि है। दुःखी प्राणी है। समझ में आया? **संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है।**

अन्तरात्मा.... (पहली) बहिरात्मा की व्याख्या की। धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि जैसा अन्तर स्वरूप है अन्तर, उसे माननेवाला। आहाहा! अन्तरात्मा। अन्तर में जो चीज़ है जैसी जितनी.... आहाहा! उसे अन्तर में भान से माननेवाला **शरीरादि से भिन्न....** शरीर से मैं भिन्न हूँ। यह राग की क्रिया दया-दान की, उससे भी मैं भिन्न हूँ और अल्पज्ञ जो

पर्याय है, उतना भी मैं नहीं; उससे भी मेरा द्रव्य भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह अन्तरात्मा है।

शरीरादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है,.... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा, ऐसा कहते हैं। ज्ञान और आनन्दस्वरूप। मुख्य दो चीज़ ली है। **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अन्तरात्मा है। उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है।** सम्यग्दृष्टि भेदज्ञानी धर्मात्मा को स्व-पर की भिन्नता का भान है। भले वह छह खण्ड के चक्रवर्ती के राज में दिखायी दे। समझ में आया? वह छह खण्ड को साधने निकला हो तो वह छह खण्ड को नहीं साधता। समयग्दृष्टि..... भाई ने कहा है न? निहालभाई ने (कहा है कि) वह छह खण्ड को नहीं साधता, अखण्ड को साधता है। उसमें है। समझ में आया? धर्मी समकिती छह खण्ड के राज में दिखायी दे, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखायी दे परन्तु वह उससे भिन्न है, ऐसा अपने को जानता है। वे मेरे नहीं, उनमें मैं नहीं, उसके आचरण जो वह करे, वह मुझसे नहीं। आहाहा!

उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है। उसे ऐसा विवेक वर्तता है कि —'मैं ज्ञान-दर्शनरूप हूँ,.... आहाहा! ज्ञान-दर्शन लक्षण। **एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है;....** शाश्वत् ध्रुव लिया यहाँ तो। माननेवाली पर्याय, परन्तु मानती है, शाश्वत् वह मैं त्रिकाल हूँ। आहाहा! देखो! यह धर्मी का लक्षण! यह धर्मी प्रौषध करे और सामायिक करे और प्रतिक्रमण करे, इसलिए धर्मी है—ऐसा नहीं। आहाहा! अभी उसे सामायिक और प्रौषध किसे कहना, इसकी खबर नहीं। मैं तो एक ज्ञान-दर्शनरूप; ज्ञान-दर्शनवाला नहीं, ज्ञान-दर्शनरूप जाननस्वरूप, उपयोगस्वरूप त्रिकाल वह मैं हूँ।

एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है;.... सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को पूर्ण शाश्वत् आत्मा ही मेरा है, ऐसी अनुभव दृष्टि होती है। समझ में आया? आहाहा! **अन्य सब संयोग लक्षणरूप,...** संयोगलक्षण (अर्थात्) पुण्य और पाप के भाव, शरीर, वाणी, मन वह सब संयोगलक्षण **अर्थात् व्यवहाररूप जो भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं,....** आहाहा! **मुझसे बाह्य हैं।'—ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।** समझ में आया? भले वह छियानवें हजार स्त्रियों के विषय में-वासना में हो (ऐसा) दिखायी दे, परन्तु उस

विषय की वासना का प्रेम नहीं है। उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! अज्ञानी को ऐसा संयोग न भी हो, परन्तु उसे पर में सुखबुद्धि, वह बुद्धि पड़ी है। और ज्ञानी को ऐसी संयोग स्थिति में संयोगभाव हो.... समझ में आया? परन्तु पर में ठीक है, हित है, इसका नाम पर में सुख है, यह बुद्धि ज्ञानी को उड़ गयी है। आहाहा! अज्ञानी बाह्य त्याग करके नग्न साधु हुआ हो तो भी उसे राग की क्रिया महाव्रत की है, वह मुझे लाभ करती है, उससे मुझे परमार्थ प्रगट होगा। समझ में आया? वह व्यवहार के भाव को अपना मानता है। गजब बातें, भाई! **वे सब मुझसे भिन्न हैं, मुझसे बाह्य हैं।' — ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।** लो! उसे अन्तरात्मा कहा जाता है।

परमात्मा.... जिनने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके, सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे परमात्मा हैं। कोई जगत का कर्ता परमात्मा और ईश्वर कर्ता, वह कोई नहीं। ऐसा है नहीं। जिसने अन्दर में से सर्वज्ञपद प्राप्त किया, वह सर्वज्ञपदस्वरूप ही है आत्मा। उसमें से जिसने सर्वज्ञपर्याय प्रगट की। आहाहा! ऐसी चैतन्य ज्ञानादि-दर्शनादि चैतन्यशक्तियों को पूर्णरूप से विकास करके, पर्याय की बात है, शक्तियाँ तो शक्ति है, परन्तु उसमें इन शक्तियों का पूर्णरूप से विकास करके सर्वज्ञपद प्राप्त किया, वे परमात्मा हैं। लो, यह बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। मोक्षपाहुड़ में भी कुन्दकुन्दाचार्य ने बात ली है। इसमें आ गया है। इस ओर है।

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतीवाएण चयहि बहिरप्पा॥

— मोक्षप्राभृते, कुन्दकुन्दः

११ पृष्ठ पर है नीचे नोट में। यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। समझ में आया?

अब इस पाँचवें श्लोक में आचार्य स्वयं उसका लक्षण करेंगे। तीन का लक्षण स्वयं करते हैं अब।

श्लोक - ५

तत्र बहिरन्तः परमात्मनां प्रत्येकं लक्षणमाह -

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥ ५॥

शरीरादौ शरीरे आदिशब्दाद्वाङ्मनसोरेव ग्रहणं तत्र जाता आत्मेतिभ्रान्तिर्यस्य स बहिरात्मा भवति। आन्तरः अन्तर्भवः। तत्र भव इत्यणष्टेर्भमात्रे टिलोपमित्यस्या- ऽनित्यत्वं येषां च विरोधः शाश्वतिक इति निर्देशात्, ''अन्तरे वा भव आन्तरोऽन्तरात्मा। स कथं भूतो भवति ? चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः चित्तं च विकल्पो दोषाश्च रागादयः, आत्मा च शुद्धं चेतनाद्रव्यं तेषु विगता विनष्टा भ्रान्तिर्यस्य। चित्तं चित्तत्वेन बुध्यते दोषाश्च दोषत्वेन आत्मा आत्मत्वेनेत्यर्थः। चित्तदोषेषु वा विगता आत्मेति भ्रान्तिर्यस्य। परमात्मा भवति, किं विशिष्टः ? अतिनिर्मलः प्रक्षीणाशेषकर्म मलः॥ ५॥''

वहाँ बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं —

बहिरातम भ्रम वश गिने, आत्मा तन इक रूप।
अन्तरात्म मल शोधता, परमात्मा मल मुक्त॥ ५॥

अन्वयार्थ - (शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः बहिरात्मा) शरीरादि में आत्मभ्रान्ति को धरनेवाला, उन्हें भ्रम से आत्मा समझनेवाला, बहिरात्मा है। (चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः) चित्त के, राग-द्वेषादिक दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहनेवाला- उनका ठीक विवेक रखनेवाला, अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करनेवाला, अन्तरात्मा कहलाता है। (अतिनिर्मलः परमात्माः) सर्व कर्ममल से रहित जो अत्यन्त निर्मल है, वह परमात्मा है।

टीका - शरीर आदि में—शरीर में और 'आदि' शब्द से वाणी तथा मन का ही ग्रहण समझना; उनमें जिसे, 'आत्मा'—ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है, वह बहिरात्मा है।

अन्तर्भव अथवा अंतरे भव, वह आन्तर, अर्थात् अन्तरात्मा। वह (अन्तरात्मा) कैसा है ? वह चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है। चित्त, अर्थात् विकल्प; दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है, अर्थात् जो चित्त को चित्तरूप से; दोष का दोषरूप से; और आत्मा

को आत्मारूप से जानता है, वह अन्तरात्मा है अथवा चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।

परमात्मा कैसे होते हैं? (परमात्मा) अति निर्मल हैं, अर्थात् जिनके अशेष (समस्त) कर्ममल नष्ट हो गया है, वे (परमात्मा) हैं।

भावार्थ - जो शरीरादि बाह्यपदार्थों में आत्मा की भ्रान्ति करता है, अर्थात् उन्हें ही आत्मा मानता है, वह 'बहिरात्मा' है। विकल्प, रागादि दोष और चैतन्यस्वरूप आत्मा के विषय में जिसको भ्रान्ति नहीं है, अर्थात् जो विकार को विकाररूप से; और आत्मा को आत्मारूप से—एक-दूसरे से भिन्न समझता है, वह 'अन्तरात्मा' है।

जो रागादि दोषों से सर्वथा रहित हैं, अत्यन्त निर्मल हैं और सर्वज्ञ हैं, वे 'परमात्मा' हैं।

विशेष स्पष्टीकरण -

बहिरात्मा - जो शरीरादि (शरीर, वाणी, मन इत्यादि) अजीव हैं, उनमें जीव की कल्पना करता है तथा जीव में अजीव की कल्पना करता है; दुःखदायी राग-द्वेषादि विभावभावों को सुखदायी समझता है; ज्ञान-वैराग्यादि, जो आत्मा को हितकारी है, उन्हें अहितकारी जानकर, अरुचि या द्वेष करता है; शुभकर्मफल को भला और अशुभकर्मफल को बुरा मानकर, उनके प्रति राग-द्वेष करता है; शरीर के जन्म से, अपना जन्म और नाश से, अपना नाश मानता है, वह मिथ्यादृष्टि 'बहिरात्मा' है।

ये शरीरादि जड़पदार्थ, प्रगटरूप से आत्मा से भिन्न हैं; ये कोई पदार्थ, आत्मा के नहीं हैं; आत्मा से पर (भिन्न) ही हैं, तथापि उन्हें अपना मानना और शरीर की बोलने-चलने आदि क्रियाओं को मैं करता हूँ, इनसे मुझे लाभ-अलाभ होता है; यह शरीर मेरा है, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं राजा, मैं रंक, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सफेद, मैं काला—इस प्रकार बाह्यपदार्थों से अपने आत्मा को भिन्न नहीं जानता, वह परपदार्थों को ही आत्मा मानता है और मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जीव-अजीवतत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है, वह जीव 'बहिरात्मा' है।

परपदार्थों में आत्मभ्रान्ति के कारण यह अज्ञानी जीव, रात-दिन विषयों की चाहरूप दावानल में जल रहा है, आत्मशान्ति खो बैठा है, अतीन्द्रिय चैतन्य आत्मा

को भूलकर, बाह्य इन्द्रिय विषयों में मूर्छित हो रहा है और आकुलतारहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता।

अन्तरात्मा - चैतन्य लक्षणवाला जीव है और उससे विपरीत लक्षणवाला अजीव है। आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा है, अमूर्तिक है और शरीरादि परद्रव्य हैं, वे पुद्गल पिण्डरूप जड़ हैं, विनाशीक हैं; वे मेरे नहीं और मैं उनका नहीं—ऐसा भेदविज्ञान करनेवाला सम्यग्दृष्टि, 'अन्तरात्मा' है।

वह जानता है कि 'मैं देह से भिन्न हूँ; देहादि मेरे नहीं हैं; मेरा तो एक ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप शाश्वत आत्मा ही है; अन्य सर्व संयोग लक्षणवाले (व्यावहारिकभाव) जो कोई भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं। आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादिभाव होते हैं, वे आस्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं तथा मुझे अहितकर हैं; इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर, उनकी सच्ची प्रतीति करके, जो अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में ही अन्तर्मुख होकर वर्तता है, वह 'अन्तरात्मा' है।

अन्तरात्मा के तीन भेद हैं—१. उत्तम अन्तरात्मा, २. मध्यम अन्तरात्मा, और ३. जघन्य अन्तरात्मा।

अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित, शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि, 'उत्तम अन्तरात्मा' हैं। ये महात्मा, सोलह कषायों[१] के अभाव द्वारा क्षीणमोह पदवी (बारहवाँ गुणस्थान) प्राप्त कर स्थित हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित सम्यग्दृष्टि, 'जघन्य अन्तरात्मा' है।

इन दोनों (उत्तम और जघन्य) के मध्य स्थित सर्व 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं, अर्थात् पञ्चम से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव, 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं।

परमात्मा - जिन्होंने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे 'परमात्मा' हैं।

---

१. अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन तथा प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभरूप भेद।

परमात्मा के दो प्रकार हैं — सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा।

अरहन्तपरमात्मा, सकलपरमात्मा हैं और सिद्धपरमात्मा, निकलपरमात्मा हैं, वे केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से सहित हैं।

अरहन्त परमात्मा के चार अघातियाकर्म शेष हैं, उनका प्रतिक्षण क्षय होता जाता है। उनके बाहर में समवसरणादि दिव्यवैभव होता है; उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि छूटती है; वे परम हितोपदेशक हैं; परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से, वे सकल (कल अर्थात् शरीरसहित) परमात्मा कहलाते हैं।

जो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित हैं, शुद्धज्ञानमय हैं, औदारिकशरीर (कल) रहित हैं, वे निर्दोष और परमपूज्य सिद्धपरमेष्ठी 'निकलपरमात्मा' कहलाते हैं, वे अनन्त काल तक अनन्त सुख को भोगते हैं।

'आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है; बाह्य इन्द्रिय विषयों में वास्तविक सुख नहीं है—ऐसी अन्तर्प्रतीति करके, धर्मी जीव, अन्तर्मुख होकर आत्मा के अतीन्द्रियसुख का स्वाद लेता है। जैसे - छोटी पीपल के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा हुआ है किन्तु उसका विश्वास करके अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो तो उस ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आये।'

आत्मा से भिन्न बाह्यविषयों में कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है। धर्मात्मा, निज आत्मा के अतिरिक्त बाहर में कहीं-स्वप्न में भी आनन्द नहीं मानता। ऐसा अन्तरात्मा, अपने अन्तरस्वरूप में एकाग्र होकर, परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट करके, स्वयं ही परमात्मा होता है॥५॥

श्लोक - ५ पर प्रवचन

वहाँ बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं— प्रत्येक की उसकी स्वरूप की दृष्टि कैसी है और उसका स्वरूप क्या है, यह बताते हैं।

यह भी मोक्षप्राभृत में है। देखो! पाँचवीं गाथा। उसमें गाथा लिखी है? गाथा नहीं लिखी, हों! उसमें। मोक्षप्राभृत, इतना लिखा है। इसमें गाथा लिखी है। लिखा है? गाथा नहीं लिखी।

मुमुक्षु : ११ पृष्ठ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ। ११ पृष्ठ, यह नहीं और यहाँ है। यह १४ पृष्ठ पर गाथा का नम्बर है, ऐसा कहा।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥ ५॥

आहाहा! इसका श्लोक (हरिगीत) नहीं हुए, नहीं? गुजराती नहीं हुए? उसमें हुए हैं या नहीं? वे इसमें डाले हैं? पीछे भी नहीं।

टीका - **शरीर आदि में—शरीर में और 'आदि' शब्द से वाणी तथा मन का ही ग्रहण समझना; उनमें जिसे, 'आत्मा'—ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है,....** यह मैं हूँ, ऐसी जिसे भ्रमणा हुई है, वह बहिरात्मा है। आचार्य का कथन है। शरीर—यह मिट्टी, धूल, जड़, जगत का अजीव तत्त्व। वाणी जगत का तत्त्व अजीव, यह वाणी और मन जड़। वे मेरे.... आहाहा! समीप में कायम रहे, तथापि वह कहे मेरे नहीं। समीप में तो सब रहते हैं। आहाहा! इस शरीर को, वाणी को और मन को अपना माने.... आहाहा! आत्मभ्रान्ति। वह मैं हूँ, वे मेरे हैं, वह बहिरात्मा।

अन्तर्भव अथवा अंतरे भव, वह आन्तर, अर्थात् अन्तरात्मा। अन्तरे भव अन्तरात्मा। **वह (अन्तरात्मा) कैसा है? वह चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है।** चित्त और दोष। वह समकिती धर्मी जीव, **चित्त, दोष और आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है। चित्त, अर्थात् विकल्प;....** आहाहा! विकल्प चाहे तो चाहे जिस प्रकार का उठे अन्दर। उस विकल्परहित है अन्तरात्मा। आहाहा!

दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है,... चित्त के विकल्प मेरे, उसकी भ्रान्ति नाश हुई है, रागादि भाव मेरे, उसकी भ्रान्ति नाश हुई है और शुद्ध चेतनाद्रव्य मैं हूँ अशुद्ध और पर्याय में

अल्प हूँ.... यह भ्रान्ति जिसकी नाश हुई है। आहाहा! समझ में आया? उसे धर्मी कहते हैं। ऐसे तपस्या करे और ऐसे व्रत पाले तो धर्मी, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? यह विकल्प जो उठता है, यह व्रत करूँ और यह करूँ। उससे मैं भिन्न हूँ और दोष जो है, उससे अर्थात् कि रागादि दोष, भिन्न करके समझाया। परन्तु वह विकल्प और सब एक ही प्रकार है। **रागादि और आत्मा,....** सम्बन्धी भ्रान्ति। राग में मैं हूँ, दोष में मैं हूँ, चित्त के विकल्प में मैं हूँ और आत्मा सम्बन्धी जो अल्पज्ञता और राग में मैं हूँ, वह सब भ्रान्ति जिसे नाश हो गयी। आहाहा! यह तो भाषा सादी है। समाधितन्त्र थोड़े प्रकाशित हुए हैं। सबके पास नहीं होंगे।

आत्मा सम्बन्धी भ्रान्तिरहित है—चित्त, अर्थात् विकल्प; दोष, अर्थात् रागादि और आत्मा, अर्थात् शुद्धचेतना द्रव्य, उनमें जिसकी भ्रान्ति नाश को प्राप्त हुई है, अर्थात् जो चित्त को चित्तरूप से; दोष को दोषरूप से; और आत्मा को आत्मारूप से जानता है,.... आहाहा! दया-दान का विकल्प उठे तो उसे विकल्परूप से जानता है; उसे आत्मारूप से जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश कभी देखा है? यह तो कुछ करना, यह कहते हैं कि वह तो राग है। ऐसा राग है, राग से आत्मा भिन्न है। परन्तु वह तो ज्ञानस्वरूप है। आहाहा!

वह **चित्त को चित्तरूप से; दोष को दोषरूप से; और आत्मा को आत्मारूप से जानता है, वह अन्तरात्मा है....** उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। आहाहा! वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' यह महाव्रत के परिणाम, साधु के अट्ठाईस (मूल) गुण का विकल्प वह सब दुःखरूप है। कहा न? ऐसा तो अनन्त बार किया और नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु लेश सुख नहीं पाया। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि मुनिव्रत धारण किया, वह दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा अर्थ करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें देखो न क्या है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार....' यह सब बैठे हैं या नहीं सामने? ऐई! प्रतापगढ़! तुम तो पुराने दिगम्बर हो। इसका अर्थ

करना पड़ेगा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार....' यह तो छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो अभव्य के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मिथ्यादृष्टि की बात है। यह कहते हैं, ऐसा कहते हैं। वे लोग ऐसा कहते हैं।

अरे! भाई! तुझे खबर नहीं। यह तो सामान्य बात है। अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये। यह व्रत का विकल्प है, वह तो राग है और इसलिए तो उसे कहा कि 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो व्रत के परिणाम जो किये, वह तो दु:ख था, आकुलता थी, राग था, विकार था, विभाव था। आहाहा! यह तो छहढाला में आता है। परन्तु यह कहते हैं, भाई! लोग ऐसा कहते हैं। ऐसा कि यह तो अभव्य के लिये है। अरे! भगवान! यह तो बन्ध अधिकार में आता है न अपने अभव्य का दृष्टान्त? ऐसा कि यह अभव्य के लिये है। अरे! भगवान! दृष्टान्त.... भाई! अभव्य जीव भी ऐसे महाव्रत के परिणाम करके नौवें ग्रैवेयक भोग भोगे-दु:ख के। ऐसा कहकर व्रत के विकल्पों को दु:खरूप सिद्ध किया है। आहाहा!

उपदेश में भी जो विकल्प उठता है, भाई! वह राग है। सुनने में जो विकल्प उठता है, वह राग है। आहाहा! वह दु:ख है। राग है, वह दु:ख है; राग है, वह आकुलता है। आहाहा! आगे आयेगा इसमें—समाधिशतक में। यह ऐसा कि दूसरे को मैं समझाता हूँ, ऐसा विकल्प है, वह पागल है। इतना धर्मी को भी विकल्प, वह पागलपन है। आहाहा! राग है न, भाई! आहाहा! चाहे तो उपदेश का हो या चाहे तो श्रवण का हो।

इसीलिए तो कहा है ७४ गाथा में, कि शुभभाव, वह वर्तमान दु:खरूप है। ७४ में। और भविष्य में दु:खरूप है। अर्थात्? इस शुभभाव से उसे पुण्यबन्ध होगा और पुण्यबन्ध से उसे कदाचित् वीतराग की वाणी और समवसरण मिलेगा। परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो उसे राग ही होगा। आहाहा! परद्रव्य की ओर का झुकाव, वह राग है, वह दु:ख है। वह अज्ञानी को खबर नहीं पड़ती। आहाहा! देखो न! कैसी बात ली

है! शुभराग दया, दान, व्रत भक्ति का वर्तमान दुःखरूप है। यहाँ तो दुःखरूप सिद्ध किया। समकिती को राग उठे, वह दुःखरूप है। आहाहा!

वे कहते हैं न भगवान की भक्ति (करे), वहाँ कहाँ राग आया—दुःख आया? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे स्वभाव का आश्रय छोड़कर जितना पर के आश्रय में जाये, वह सब आकुलता है। समझ में आया? आहाहा! श्रीमद् ने कहा है, एकाध को भी धर्म प्राप्त कराना, वह तीर्थंकरगोत्र का कारण है। ऐसा कहा है। परन्तु ऐसा कहक कहा है कि वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञायकस्वरूप परमात्मा में विकल्प का उत्थान हो, वह तो दुःखरूप है। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो इसका अर्थ हो नहीं गया?

मुमुक्षु : दुःख ही रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख रहा। आहाहा! मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसे पंच महाव्रत पालन किये, नग्नपना लिया परन्तु उसे सुख नहीं मिला। इस आत्मदृष्टि के अनुभव बिना सुख नहीं होता। यह तो सब क्रियाकाण्ड का राग है। आहाहा! बहुत कठिन बातें। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है न, सोनगढ़ एकान्तवाद। ऐसा नाम पड़ा। भगवान! यह नाम रहने दे, भाई!

मुमुक्षु : यह... धीरे-धीरे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....एक बार कहा था। वे नानाभाई छोटाभाई है। एकान्त है परन्तु अब अपने संगठित एक रखना और धीरे-धीरे सुधर जायेंगे। अरे! भगवान! आहाहा!

कहते हैं.... है न? अन्तरात्मा **अथवा चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।** आहाहा! चित्ता का विकल्प, वह मन का विकल्प है न? मन के सम्बन्ध से होता है न? विकल्प उठे, वह मन के सम्बन्ध से है। वह कहीं आत्मा के सम्बन्ध से नहीं होता। आहाहा! इसलिए चित्त का विकल्प सिद्ध किया है। आहाहा! यह सब **चित्त और दोषों में 'आत्मा' माननेरूप भ्रान्ति, जिसके जाती रही है, वह (अन्तरात्मा) है।** अब परमात्मा कैसे होते हैं, यह कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)